'नास्तिको वेदनिन्दकः' - कितना सार्थक ?

- जैन साध्वी श्री चारित्रप्रभाजी महाराज
(दर्शनशास्त्री, साहित्यरत्न, जैन सिद्धान्ताचार्य)

भारत में कितने दर्शन 'भारतीय' हैं, यह निश्चय करते समय, जो शब्द सबसे पहिले सामने आता है, वह है - 'षड्दर्शन'। इस शब्द के अन्तर्गत कौन कौन से दर्शन आ सकते हैं, कौनसे नहीं ? इस विषय में किसी भी दो दार्शनिक, विद्वानों की सम्मति, एकसी नहीं मालूम पड़ती। वस्तुतः, भारतीय दर्शनों की संख्या न तो कभी सुनिश्चित हो सकती है, न ही हो पायेगी। इसलिये, 'षड्दर्शन' शब्द के अन्तर्गत आने वाले दर्शनों का सार्वकालिक निर्धारण सुनिश्चित कर पाना सहज नहीं है; क्योंकि, यह निश्चय करनेवाला विद्वान्, जिन छः दर्शनों के प्रति, अनुकूल मनोभाव रखता होगा, उन्हीं का परिगणन, उक्त छः संख्या के बोधक शब्द की अर्थ सीमा में कर लेगा। अथवा जिन दर्शनों के प्रति उसकी प्रतिकूल मनःस्थिति होगी, उन्हें उक्त संख्या से बाहर रखने में ही उसके विद्वत्ता-गर्व की सन्तुष्टि होगी. इसलिए, सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि प्राचीन ग्रंथकारों ने 'षड्दर्शन' के अन्तर्गत किन दर्शनों का समावेश किया है।

प्राचीनतम ग्रंथों में शङ्कराचार्य का 'सर्वसिद्धान्त संग्रह' मुख्य ग्रंथ है। इसमें क्रमशः लोकायत, आर्हत्, बौद्ध (चारों सम्प्रदाय), वैशेषिक, न्याय, मीमांसा, सांख्य, पातञ्जल, व्यासवेदान्त को मिलाकर कुल दशदर्शनों की चर्चा है। हरिभद्रसूरि के 'षड्दर्शन समुच्चय' में बौद्ध, नैयायिक, कपिल, जैन वैशेषिक और जैमिनी दर्शनों की विवेचना है। जिनदत्तसूरि के षड्दर्शन समुच्चय में जैन, मीमांसा, बौद्ध, सांख्य, शैव और नास्तिक नामसे छः दर्शनों का परिगणन पूर्वक विवेचन किया गया है। राजशेखरसूरि ने जैन, सांख्य, जैमिनि, योग-(न्याय), वैशेषिक, और सौगत, कुल छः दर्शनों का विवेचन किया है। सुविख्यात टीकाकार मल्लिनाथ के पुत्र ने पाणिनि जैमिनि, व्यास, कपिल, अक्षपाद और कणाद के दर्शनों का विश्लेषण 'षड्दर्शन' के रूप में किया है। 'हयशीर्षपञ्चरात्र' में और 'गुरुगीता' में भी जिन दर्शनों का उल्लेख 'षड्दर्शन' के रूप में है, उनके नाम हैं - गौतम, कपिल, पतञ्जलि, व्यास और जैमिनि।

'शिवमहिम्नस्तोत्र' में सांख्य योग पाशुपत और वैष्णव दर्शनों का; कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सांख्य, योग, लोकायत, दर्शनों का; माधवाचार्य के 'सर्वदर्शन संग्रह' में चार्वाक, बौद्ध, आर्हत्, रामानुज, पूर्णप्रज्ञ (माधव), नकुलीश पाशुपत, शैव, रसेश्वर, औलूक्य, अक्षपाद, जैमिनि, पाणिनि, सांख्य, पातञ्जल, शाङ्कर आदि का; मधुसूदनसरस्वती के 'सिद्धान्त बिन्दु' में और 'शिवमहिम्न स्तोत्र' टीका में भी न्याय-वैशेषिक, कर्ममीमांसा - शारीरिक मीमांसा, पातञ्जल, पाञ्चरात्र, पाशुपत, बौद्ध, दिगम्बर, चार्वाक, सांख्य और औपनिषद् दर्शनों का उल्लेख है। ये सारे परिगणन-प्रयास, किसी एक निश्चित संख्या के अनुसार नहीं किये गये, न ही इनमें परिगणित दर्शनों के नामों में 'एकरूपता' या 'शब्द साम्य' है। इस स्थिति में 'षड्दर्शन' शब्द का अभिप्राय क्या लिया जाये ? यह निश्चय कर पाना सहज-सुकर नहीं है। वस्तुतः यह 'षड्दर्शन' शब्द ही, अपना कोई खास - अभिप्राय नहीं रखता। क्योंकि, और कोई ऐसा प्रामाणिक सिद्धान्त नहीं है, जो इस छः संख्या के निर्धारण में सहयोगी भूमिका निभा सके।

भारतीय दर्शनों का वर्गीकरण मुख्यतः 'आस्तिक' और 'नास्तिक' नाम के दो वर्गों में किया जाता रहा है। कुछ विद्वान 'वैदिक' और 'अवैदिक' इन दो विभागों में वर्गीकृत करते हैं। इस वर्गीकरण में 'वैदिक' शब्द से 'आस्तिक' दर्शनों का और 'अवैदिक' शब्द से 'नास्तिक' दर्शनों का ग्रहण करने की परम्परा प्रचलित होगयी है। तथापि, यह सुनिश्चित हो जाता है कि भारतीय दर्शन के मूलतः दो विभाग हैं।

उक्त विभागो में से 'नास्तिक' विभाग के अन्तर्गत ही 'जैन दर्शन' का समावेश, प्रायः किया गया है। इस निर्धारण का आधार, मनु आदि स्मृतिकारों की मान्यता का माना जाता है। इसी मान्यता को अधिकांश भारतीय, और पश्चिमी विद्वानों ने भी अपना समर्थन दिया है। किन्तु इसी सिद्धान्त के आधार पर, अन्य दर्शनों के सैद्धान्तिक - विवेचनों पर जब दृष्टिपात किया जाता है, तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि जिन दर्शनों को 'आस्तिक' वर्ग में परिगणित किया जाता है, उनकी 'आस्तिकता' और जैन दर्शन की 'नास्तिकता' के निर्धारण में, अपनाये गये सिद्धान्त की मानक-धारणा, कसौटी पर खरी नहीं उतरती।

'मनुस्मृति' के अनुसार 'नास्तिक' वह है, जो 'वेदनिन्दक' है। इस सिद्धान्त की सार्थक-अन्विति, जैनदर्शन द्वारा 'वेदों' का 'पौरुषेयत्व' मानने के आधार पर करलीगयी। क्योंकि - जैनदर्शन, वेदों की 'अपौरुषेयता' को प्रामाणिक नहीं मानता। बुद्धि का प्रयोग करने पर यह सिद्ध भी हो जाता है कि वेद 'अपौरुषेय' नहीं है। इसलिए, इस लेख में, मात्र यही परीक्षण करना है कि 'आस्तिक' वर्ग के अन्तर्गत मान्य दर्शन, वेदनिन्दक' की परिधि में आते हैं, या नहीं।

शङ्कराचार्य का कथन है कि 'दार्शनिकों में वस्तुतः बादरायण और जैमिनि, दो ही दर्शनिक ऐसे हैं, जिन्होंने वेदमंत्ररूपी फूलों को, अपने सूत्रों के द्वारा गूंथकर, वैदिक आचार्यों की एक सुव्यवस्थित माला, अपने दर्शन के रूप में उपस्थापित की है। शेष दार्शनिक तो 'तार्किक' भर हैं। उनका वैदिकदर्शन में प्रवेश नहीं है।[१] इन दोनों प्रमुख दार्शनिकों के साथ, अन्य आस्तिक दर्शनों के आचार्यों का भी

अहिंसा सत्य अचौर्य हि, ब्रह्मचर्य सन्तोष ।
जयन्तसेन धर्म यही, करता जीवन पोष ॥
Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह समीक्षण किया जा रहा है कि वे किस हद तक 'वेदानुसारी' हैं, या 'वेदनिन्दक' हैं।

प्राचीन आचार्यों में एक वर्ग 'वेदत्रयी' का समर्थक रहा है। यह वर्ग 'अथर्ववेद' को वेद ही नहीं मानता था। मनुस्मृति भी इसी वर्ग से सम्बन्धित है, यह सर्वविदित है। इस वर्ग में भी, यजुर्वेद से सम्बन्धित दार्शनिक/आचार्य सामवेद की, और सामवेदीय विद्वान् यजुर्वेद की निन्दा करते रहे हैं। इसीलिये, मनुस्मृति ने सामवेद के 'वेदत्व' को मान्यता देना तो दूर रहा, उसकी ध्वनि तक को अपवित्र घोषित किया हुआ है।[२] जब कि श्रीमद्भगवद्गीता में व्यास ने श्रीकृष्ण के मुख से सामवेद को श्रेष्ठतम वेद कहलवाया है।[३] इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि 'मनुस्मृति' स्वयं ही वेदनिन्दा में पीछे नहीं है। फिर, इसी के स्व-विरोधी कथन को प्रामाणिक कैसे माना जाये? और जब वेद ही परस्पर एक-दूसरे की निन्दा करते हों. तो वेद-निन्दा को नास्तिकता का आधार कैसे माना जाये?

कुछ उपनिषत्कार तो खुल्लमखुल्ला वेद के सिद्धान्तों का खण्डन करते हैं और उन्हें निस्सार घोषित करते हैं। जैसे, ऋग्वेद, यज्ञक्रिया के समर्थन में कहता है - 'जो पुरुष यज्ञरूपी नौका मे न चढ़ सके वे कुकर्मी हैं, नीच अवस्था में पड़े हुए हैं[४]' इस कथन का उत्तर देते हुये मुण्डकोपनिषत् कहती है - 'हे वेद! तुम्हारी यह नौका तो जीर्ण-शीर्ण हो गयी है। वैसे भी, यह पत्थरों से बनी हुई है। इसलिये, तुम्हारे जैसे मूर्ख ही इसे कल्याणकारी मानते हुए आनन्दित होते होंगे।जो इस संसार-सागर में डूबते-तैरते हुए जन्म-जन्मान्तरों में भटकते रहते हैं।[५]' इसी उपनिषद् में चारों वेदों को 'अपरा विद्या' कहकर, उनकी सांसारिकता बतलाई है। अन्य अनेकों स्थलों पर भी ऐसी ही बातें कहीं गई है। जिनसे ज्ञात होता है कि 'वेद मुक्तिदाता हैं' इस कथन की, और उनके क्रियाकाण्डों की भी निन्दा उपनिषत्कारों ने की है। अतः उपनिषत्कारों को भी नास्तिक माना जाना चाहिए।

व्यास, वेद-सिद्धान्तों की विवेचना करने में अग्रणी हैं, यह आस्तिक-दार्शनिकों की मान्यता है। किन्तु, श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि वेदों को सांसारिकता का कारण, और मुक्ति देने में असमर्थ, जितनी प्रबलता से व्यास ने उद्घोषित किया है, वैसी घोषणा दूसरों के द्वारा कहीं नहीं की गई। उदाहरण के लिये गीता का अठारहवां अध्याय देखें। इसमें 'शुक्ल' और कृष्ण' गतियों का कथन किया गया[६] है। इसी स्थल पर, वेद, यज्ञ और तपस्या में निहित फल की सारहीनता का स्मरण दिलाते हुए, वेद आदि के पठन को 'कृष्णमार्ग' बतलाया गया है[७]। ग्यारहवें अध्याय में स्पष्ट कहा गया है कि वेद, न तो पर ब्रह्म की प्राप्ति में सहयोगी हैं, न ही मुक्ति दिलाने में साधक[८] हैं। नवम अध्याय में वेदों का फल 'स्वर्ग' बतलाया गया है, और यह कहा गया है कि पुण्यक्षीण हो जाने पर फिर मृत्यु लोक में आना पड़ेगा।[९]

दूसरे अध्याय का कथन तो विशेष उल्लेखनीय है। यह कथन, श्रीकृष्ण के द्वारा अर्जुन के प्रति कहा गया है। कृष्ण कहते हैं - 'जो वेदों के वाक्यों में अनुरक्त हैं, वे, 'स्वर्ग' से भिन्न 'मोक्ष' मानते ही नहीं है। वे तो सिर्फ लोगों को लुभाने के लिये ही 'मोक्ष' की चर्चा करते हैं।[१०] इसलिये हे अर्जुन! संसार में बांधकर रखने के लिये तीन-लड़ियों वाली रस्सी की तरह, 'वेदत्रयी' को मानो और त्रिगुणातीत बनो[११]' इतना ही नहीं, वे आगे और स्पष्ट कहते हैं - 'परस्पर विरुद्ध वेदों के मंत्रों को सुनने से बुद्धि विचलित हो जाती हैं। किन्तु, यह विचलित-बुद्धि, जब भी आत्मा - (शुद्ध आत्मा-परमात्मा) में स्थिर बनेगी, तभी तुम 'समत्व' योग को प्राप्तकर पाओगे।[१२]'

गीता में इस प्रकार वेदों की मुक्ति-हेतुता का खण्डन करके, और उनकी सांसारिकता को स्पष्ट करके, वेदासिद्धान्तों का समर्थन नहीं किया है, बल्कि, उनका खण्डन करके, निन्दा ही की है। इस मनु की परिभाषा के अनुसार व्यास का समादर भी 'नास्तिक' श्रेणी के दार्शनिकों द्वारा किया जाना चाहिए।

दश-अंगिराओं में 'कपिल' की प्रधानता को ऋग्वेद भी स्वीकार करता है।[१३] इससे यह स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद के रचना काल में कपिल का प्रभाव इतना अधिकाधिक है कि उससे प्रभावित होकर ऋग्वैदिक आचार्यों ने उनका स्मरण भी विशेष सम्मान के साथ किया है। किन्तु, वही कपिल, महाभारत के शान्ति पर्व के २६८ वें अध्याय में 'गो-सम्वाद' के समय, घोषणा करता है - 'हिंसायुक्त धर्म, यदि वेदसम्मत भी हो, तो भी, वह 'धर्म' का दर्जा प्राप्त करने लायक नहीं है। उसने वेदसम्मत यज्ञों के विभेद में प्रचार भी किया था।

इस प्रकार हम देखते है कि वैदिक ऋषियों में भी पारस्परिक विरोध प्रबल है। वे एक दूसरे की निन्दा भी खुले रूप में करते हैं। इस स्थिति में किस ऋषि को 'आस्तिक' और किस ऋषि को 'नास्तिक' माना जाये? यह प्रश्न उठ खड़ा होता है। इस किंकर्त्तव्यविमूढ़ता की स्थिति में, जैनदर्शन को 'नास्तिक' श्रेणी में, और व्यास आदि को 'आस्तिक' श्रेणी में रख दिया गया हो इस पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए। इसलिए, यह मान्यता - 'वेदनिन्दक नास्तिक है' - एक व्यर्थ का कथन जान पड़ती है। अतः, सुधी जनों को चाहिए कि वे इस विषय में कोई निर्दोष - मान्यता स्थापित करें, और तब, भारतीय दर्शनों का वर्गीकरण, आस्तिक - नास्तिक वर्गों में सुनिश्चित करें। सामायिक सन्दर्भों में, इस तरह का निष्पक्ष चिन्तन हो तो, समाज को सही दिशा देने में सार्थक भूमिका निभा पायेगा।

मधुकर मौक्तिक

जैन सिद्धांत में प्रार्थना के अन्तर्गत भावरमणता का परिचय करानेवाले 'जय वीयराय सूत्र में आत्म प्रबोध एवं प्रबुद्धता की उद्घोष–ध्वनि स्पष्ट दिखाई देती है। इसमें भाव का महत्त्व एवं आलंबन तथा आलंबक की गुरुता–लघुता का नैसर्गिक चित्रण आलेखित है। प्रार्थना के समय ज्यों ज्यों दृढ चित्तावस्था–एकाग्रता वृद्धिगत होती जाती है, त्यों त्यों सद्भावों की सरिता भी प्रवाहित होती जाती है। यह सद्भाव सरिता दुर्भावना की बीहड़ अटवी को भी प्लावित करके हरी भरी बना देती है।

'आ' से मर्यादा कही, 'ज्ञा' से करलो ज्ञान।
जयन्तसेन सुखी सदा, रहता आज्ञावान॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org